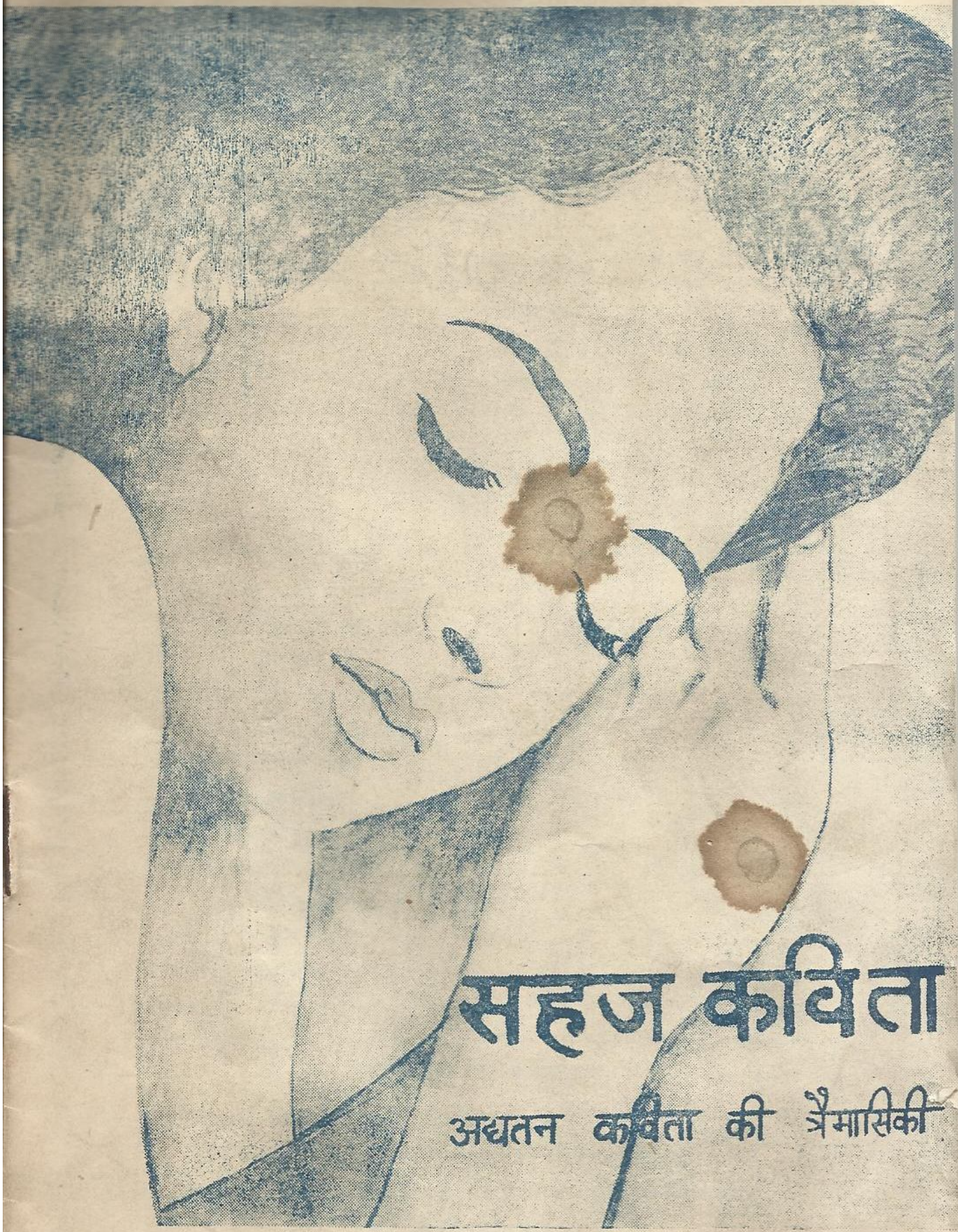

सहज कविता

अद्यतन कविता की त्रैमासिकी

(अवेतनिक सम्पादक)—डॉ० सुधेश

सहज कविता

त्रैमासिक
जनवरी, फरवरी, मार्च 1994
वर्ष-1 अंक-1

क्रम

कविता—दिनेशचन्द्र द्विवेदी 2
सहज कविता की आवश्यकता 3
ग़ज़ल—वेदप्रकाश अमिताभ 8
पूर्णिमा पूनम 8
गीत—वेदप्रकाश अमिताभ 9
गोपीनाथ उपाध्याय 9
दोहे—दिविक रमेश 10
रेखा व्यास 10
हाइकु—सुधेश 11
कविताएँ—ममता लिंगरकर 12
रामचन्द्र माली 13
सुधेश 14
रणजीत 15
क्षणिकाएँ—अपर्णा भट्टाचार्य 17

सम्पादक डॉ० सुधेश

प्रकाशक—श्रीमती सुशीला शर्मा
मूल्य—चार रुपये, वार्षिक—सोलह रुपये (विशेषांक सहित)
सम्पर्क—फ्लैट 1335 पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067

जीना सीख अगर मैं पाऊं

—दिनेशचन्द्र द्विवेदी

मानवता के विजय-मार्ग में
जो चट्टानें सीना ताने
खड़ी हुई हैं उन्हें तोड़ कर
स्वर्ग सृजित कर डालूंगा मैं
इसी धरा पर
जिस से बढ़कर स्वर्ग कहीं अन्यत्र
मात्र मृगतृष्णा ही है,
घोर निराशा की पीड़ा से
घुट घुट कर जीने वालों को
लौटा सका उमंगें उनमें
आंसू अपने हाथ पोंछ कर
रूखे अधरों पर मुस्कानों की
फुलवारी यदि महका दी
चन्दनिया छावों के नीचे मीठे सपनों में खो जाऊं,
जीना सीख अगर मैं पाऊं।

लड़ूं बेकसों के हित
जिन के हक़ का सुख हरने की
परम्पराएं पड़ी हुई हैं
उनमें भर चेतना
स्वत्व के लिए जूझना सिखा सका तो
इस धरती की हंसती गाती मनमोहक तस्वीर बनेगी
यह पावन कर्तव्य निभाने
मैं तन-मन-धन से जुट जाऊं
जीना सीख अगर मैं पाऊं।

सहज कविता की आवश्यकता

पिछले कुछ दशकों की हिन्दी कविता पर दृष्टि डालने से एक बात साफ दिखाई देती है कि कविताओं के घटाटोप में कृत्रिम कविता अधिक लिखी गई है, और सहज, स्वाभाविक, सही और वास्तविक कविता कम लिखी गई है। इस कृत्रिम कविता में प्रखर बौद्धिक मुद्रा अपनाई गई, क्षण के यथार्थ, भोगे हुए यथार्थ, सम्पूर्ण यथार्थ, मनोवैज्ञानिक यथार्थ आदि का आग्रह व्यक्त किया गया और विचार तथा बुद्धि को अधिक महत्व दिया गया। साहित्य-लेखन में हृदय और बुद्धि का बँटवारा करके नहीं चला जा सकता। समस्त साहित्यिक-लेखन एक बौद्धिक प्रयास है, जिसमें भावना की सक्रियता भी साथ रहती है। युगीन यथार्थ की चेतना के बिना कोई रचना साहित्य कहलाने की अधिकारिणी नहीं होती। विवाद यथार्थ के सम्यक् बोध और उसकी अभिव्यंजना के रूपों को लेकर हो सकता है। विचार से भी कविता की दुश्मनी नहीं है और विचार की परिणति प्रायः विचारधारा में होती है अथवा होनी चाहिए। विचार को महत्व देना पर विचारधारा से बिदकना छद्म वैचारिकता है। फिर कोई विचार स्वयं कविता नहीं होता, बल्कि वह कविता में निहित होता है। कोई ऐन्द्रिय संवेदना, भाव अथवा अनुभूति भी स्वयं में कविता नहीं होती। विचार अथवा भाव शब्दों में व्यंजित होकर कविता बनता है।

विगतदशकों में मात्र शब्दप्रयोग, वाक्वैचित्र्य, नग्नयथार्थ की व्यंजना, वैचारिकता को ही कविता की संज्ञा देने की प्रवृत्ति मिलती है। कविता के नाम पर प्रतीक लिखे जाने लगे, और लिखने से पहले उन्हें आकाश से पाताल तक ढूंढा जाने लगा। कविता के नाम पर विम्ब गढ़े जाने लगे, मानो विम्ब ही कविता हो। कविता में प्रतीकों और विम्बों का प्रयोग होता है, पर स्वाभाविक और प्रासंगिक-रूप में। पर जहां प्रतीकों और विम्बों को लिपिबद्ध करके उन्हें ही कविता की संज्ञा दी जाए, वहां लगता है कि साधन को साध्य का स्थान देने की मनमानी की जा रही है। सहजकविता में प्रतीक, विम्ब, अप्रस्तुतविधान का समावेश स्वाभाविक रीति से होता है, पर ये कविता के साध्य न होकर अभिव्यंजना के माध्यम-भर होते हैं। इन्हें कविता का पर्याय नहीं माना जा सकता। इन्हें कविता का पर्याय

मानने से कृत्रिमता शुरू हो जाती है।

पिछले दशकों की हिन्दी कविता की कृत्रिमता उसके कृत्रिम काव्य-शिल्प में ही प्रकट नहीं होती, बल्कि वह उसके कथ्य में भी है। विगतदशकों में जिस प्रकार देश की राजनीति में सामान्यजन पिटता ही गया है, उसी प्रकार कविता में भी सामान्यजन हाशिये पर है। उसके बीच मुख्यरूप से मध्यवर्ग ही प्रतिष्ठित है। उसमें मध्यवर्ग और उच्चमध्यवर्ग से आये कवियों की कुण्ठाओं, उनके अहम् की स्फीति, अवसरवादी नारों और यथास्थिति को बनाये रखने के उद्देश्य से मुख्य प्रश्नों को पीछे धकेल कर गौण प्रश्नों के शोरगुल को सुना जा सकता है। वैचारिक संघर्ष को टालने अथवा उसे दिग्भ्रमित करने के प्रयास यही बताते हैं कि विगतदशकों की हिन्दी कविता पर मध्यवर्ग हावी रहा है। व्यावसायिक पत्रिकाओं में मध्यवर्ग की रुचि को तुष्ट करने वाली प्रेम-कविताएं या शाकाहारी क़िस्म की अहिंसक कविताएं छपती रही हैं, या उनमें मध्यवर्ग को परेशान करने वाले प्रश्नों को उछाला जाता रहा है। कुछ स्वनाम धन्य साहित्यिक पत्रिकाएं सम्पादकों के गुटों से जुड़े कवियों को उछालती रही हैं। सामन्तवाद के अवशेष उच्चवर्ग या उच्चमध्यवर्ग के साहित्यिक वर्चस्व को चुनौती देने के लिए ही हिन्दी में अनेक लघु पत्रिकाओं के प्रकाशन का सिलसिला चला, और चल रहा है।

हिन्दी कविता में सामान्यजन ने कठिनाइयों के बावजूद अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है, पर इस तथ्य को झुठलाना कठिन है कि हिन्दी भाषियों के बीच हिन्दी कविता उस प्रकार प्रतिष्ठित नहीं है, जिस प्रकार बंगलाभाषियों के बीच बंगला कविता या उर्दू प्रेमियों के बीच उर्दू कविता। इसके अनेक कारणों में से एक कारण यह है कि विगतदशकों की हिन्दी कविता शिक्षितबुद्धिजीवी वर्ग (जो प्रायः मध्यवर्गीय है) तक सीमित है। हिन्दी भाषी सामान्यजनता सस्ते उपन्यास पढ़ती है, कामिक्स का आनन्द लेती है, उर्दू ग़ज़ल का भी मज़ा ले लेती है, पर बनावटी ढंग की बुद्धिजीवी कविता उसे पसन्द नहीं आती। एम० ए० के छात्र भी शिकायत करते सुने जाते हैं कि उन्हें कबीर, तुलसी, सूरदास आदि पुराने कवियों की कविताओं से कोई कठिनाई नहीं होती, पर अज्ञेय और मुक्तिबोध जैसे आधुनिक कवियों की कविताएँ प्रायः उनकी समझ से बाहर रहती हैं। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी जब आधुनिक हिन्दी कविता को हृदयंगम करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, तब सामान्य पाठकों और हिन्दी भाषी जनता के बीच आज की हिन्दी कविता की क्या जगह है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

उक्त स्थिति के लिए आज की हिन्दी कविता की कृत्रिमता बहुत हद तक उत्तरदायी है। यह कृत्रिमता कुछ कवियों के काव्य के कथ्य और शिल्प दोनों में है जैसे अज्ञेय की कविता में और कुछ कवियों की कविता का कथ्य जनोन्मुखी है, पर उसका शिल्प विशिष्ट रुचि सम्पन्न अभिजातवर्ग का है, जैसे मुक्तिबोध और

शमशेर की कविता में। केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन जैसे कवि इसके अपवाद हैं।

सामान्य हिन्दी भाषी जनता के बीच आज की हिन्दी कविता की सम्यक् प्रतिष्ठा के अभाव का एक उल्लेखनीय कारण आज की अधिकांश हिन्दी कविता की गद्यात्मकता है। आज हिन्दी में कविता लिखना बहुत आसान मान लिया गया है। जिन्हें हिन्दी भाषा की प्रकृति का ज्ञान नहीं, छन्द और लय का ज्ञान नहीं, जिनके पास न पर्याप्त शब्दभण्डार है और न अनुभव की पूँजी, वे कैसे भी शब्दों को जोड़कर उसे कविता घोषित कर देते हैं। इसीलिए आज हिन्दी कवियों की (छद्म कवियों की विशाल संख्या को मिलाकर) बड़ी भीड़ दिखाई देती है, पर उत्कृष्ट कविता लिखने वाले कम ही हैं। फिर कविता में गद्य के गुणों का समावेश एक बात है, और कोरा गद्य लिखकर उसे कविता कहना और कहलवाना एकदम दूसरी बात है। लगभग पचास वर्षों बाद प्रयोगवादी आन्दोलन के तहत लिखी गई छन्दहीन अतुकान्त कविता को उसकी गद्यात्मकता के कारण आज भी अनेक हिन्दी प्रेमी कविता मानने से इन्कार करते हैं (यह उनका दुराग्रह हो सकता है)। पर विगत दशकों में अतुकान्त शैली में जहां अच्छी कविताएं लिखी गई हैं, वहां ढेरों गद्यात्मक रचनाएं लिखी गई हैं, जो केवल अतुकान्त ही नहीं बेतुकी भी हैं, जिनमें छन्द तो छोड़िये लय का समावेश भी नहीं है। लगता है कि अनेक हिन्दी कवियों ने कविता और गद्य का भेद मिटा दिया है। वह भेद तो साफ दिखाई देता है, पर उन्होंने कविता को ही मिटा दिया है। आज की हिन्दी कविता की लोकप्रियहीनता का एक बड़ा कारण उसकी गद्यात्मकता है—ऐसी गद्यात्मकता, जिसमें न गद्य की स्पष्टता और तार्किकता है और न कविता की लय, और न अभिव्यंजना की सहजता तथा प्रेषणीयता।

इसलिए मेरा विचार है कि आज हिन्दी में सहज कविता की बड़ी आवश्यकता है अथवा कविता में सहजता अपेक्षित है। 'सहज कविता' कविता सम्बन्धी किसी नये आन्दोलन का पर्याय नहीं है, क्योंकि इस प्रकार के आन्दोलनों की परिणति हम देख चुके हैं। 'सहज कविता' किसी नये साहित्यिक नारे का नाम भी नहीं है, क्योंकि केवल नारों से साहित्यिक परिवर्तन नहीं हुआ करते। राजनीतिक आन्दोलनों में नारों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है, जहां उनकी मदद से लोगों को आवेश में लाकर उन्हें पंक्तिबद्ध किया जा सकता है, पर साहित्य में कोई आन्दोलन अनुकूल सामाजिक आधार के बिना नहीं होता। पिछले युगों की अधिकांश कृत्रिम कविता से अलग कविता के लिए यहां 'सहज कविता' शब्दावली का उपयोग किया गया है।

यहाँ 'अधिकांश' शब्द महत्वपूर्ण है, क्योंकि पिछले युगों में अच्छी और सहज कविताएं भी लिखी गई हैं। दुर्भाग्य यह है कि ऐसी कविताएं कम लिखी गईं और

अपनी दुन्दुभी बजाने वालों और अवसरवादी आलोचकों ने उन्हें अनसुनी कर दिया। केदारनाथ अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, नागार्जुन आदि ने अनेक सहज कविताएं लिखी हैं। ऐसी कविताएं किसी आन्दोलन की आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए नहीं लिखी गईं, बल्कि वे कवि की जीवनगत परिस्थितियों के दंश से प्रेरित लगती हैं।

यहां कुछ कवियों को महिमामण्डित करने और विगत कविता के अवमूल्यांकन का प्रयास नहीं किया जा रहा है। पर विगत कुछ दशकों से हिन्दी कविता के लेखन और उसके मूल्यांकन में जिस अराजकता और पक्षपात के दर्शन हो रहे हैं, उसके प्रति कविता के पाठकों और कवियों का ध्यान आकृष्ट करना मैंने आवश्यक समझा।

सहजकविता कविता की अनिवार्य शर्त को पूरी करने वाली कबिता है। कविता की अनिवार्य शर्त लय है। लय की विभिन्न योजना ही छन्द है। लय छन्द का मूलाधार है। यदि छन्द के नियमों का निर्वाह आज प्रासंगिक या आवश्यक नहीं रहा, क्योंकि नियमनिर्वाह का आग्रह भाव की सहज व्यंजना को बाधित करता है, और नियम की चिन्ता में भाव पीछे छूट जाता है, तो इसका यह अर्थ नहीं कि कविता से लय को भी बहिष्कृत कर दिया जाए। और कविता की लय मुख्यत: और अनिवार्यत: शाब्दिक होती है अर्थात लय शब्द की होती है। अर्थ की लय का तर्क व्यर्थ का कुतर्क है और कविता की प्रकृति को ठीक तरह समझने में बाधक है। 'लय' का यदि मनमाना अर्थ 'संगति' लिया जाए और 'अर्थ की लय' को 'अर्थ की संगति' के रूप में समझा जाए तो तर्क का रूप दूसरा हो जाता है। पर 'लय' जैसे काव्यशास्त्रीय शब्द का मनमाना अर्थ लेना और वह भी कविता के प्रसंग में, शब्द के साथ बलात्कार करना है।

तो कविता को सहज होने के लिए उसका छन्दमय होना आवश्यक नहीं है। यदि वह छन्दमय हो तो सहजता से वंचित भी नहीं कही जा सकती, क्योंकि छन्द कविता की प्रकृति के अनुकूल पड़ता है। पर कविता को सहज होने के लिए लययुक्त तो होना ही चाहिए।

पर कविता की लय एक प्रकार की नहीं होती, जैसे जीवन और संगीत विभिन्न लयों का संगम है। कवि ने किसी कविता में जिस प्रकार की लय को चुना है—मन्दगति वाली लय अथवा द्रुतगति वाली लय—उसी लय में बंधी शब्दावली उस कविता के लिए उपयुक्त होगी।

फिर दोहे की यति के समान कविता की लय को कहां तोड़ा जाए, यह कवि के कौशल पर निर्भर है। जहां तक लय को खींचने में भावखण्ड की अभिप्रेत व्यंजना सम्भव होती है, वहीं तक शब्दावली अथवा पंक्ति फैल जाती है, जैसे संगीत में गायक स्वर को वहीं तक खींचता है, जहां तक वह उसकी आवश्यकता समझता है। इस प्रकार अतुकान्त कविता की पंक्तियों का छोटा बड़ा होना मन-

माने ढंग से नहीं होता, पर वह भावखण्ड की अभिव्यंजना की आवश्यकता और लय की ज़रूरत के अनुसार होता है। इस प्रकार अतुकान्त शैली में लययुक्त कविता लिखी जा सकती है, बल्कि ऐसी बहुत-सी कविताएं लिखी गई हैं। पर अतुकान्त शैली में जहां लय को भी छोड़ दिया गया, वहां रचना गद्य के निकट पहुंच गई है। ऐसी रचनाओं की बहुलता के कारण प्राय: अतुकान्त शैली में लिखित कविताओं को गद्यात्मक माना जाता है।

सहजकविता तुकान्त हो सकती है और अतुकान्त भी, पर उसे पहले कविता तो होना होगा। कविता की सहजता जहां उसके कथ्य पर निर्भर करती है, वहां उसके रूप पर भी। कवि का अनुभूत सत्य उसकी कविता के कथ्य को सहज बनाता है और उसके अनुकूल सहज सम्प्रेषणीय अभिव्यंजना कविता के रूप को सहज बनाती है। आशय यह है कि सहजता रूपगत है और कथ्याश्रित भी। इसलिए सहज कविता के नाम पर न तुकान्त शैली की अनिवार्यता बताई जा रही है और न अतुकान्त शैली का विरोध किया जा रहा है। इसके बजाय बनावटी कविता, कोरी गद्यात्मक रचना, सम्प्रेषणहीन कविता और अभिजात कविता पर प्रश्नचिह्न लगाया जा रहा है। दूसरे शब्दों में कविता की सहजता और कविता के कवितापन पर बल देने के लिए ही 'सहज कविता' का प्रकाशन किया जा रहा है।

—सुधेश

ग़ज़ल

आग अपनी और उन की रोटियां सिकती रहीं,
दूर तक पसरे धुएं में पीढ़ियां घुटती रहीं।
आग थी भरपूर थी, लेकिन कहीं मजबूर थी,
वायदों की ओस में चिनगारियां बुझती रहीं।
वे दरख्तों की जड़ों को तो हिला पायी नहीं,
घोंसलों को तोड़ कर कुछ आँधियाँ हँसती रहीं।
कुछ नहीं होगा अगर सब एकला चलते रहे,
है तभी तक ज़ुल्म जब तक मुट्ठियां भिंचती नहीं।

—वेदप्रकाश अमिताभ

तुम बिन इक रहज़न लगता है,
सावन भी दुश्मन लगता है।
साया भी रोशन लगता है,
प्रेम का तू दर्पण लगता है।
तू जो नहीं तो महफ़िल महफ़िल
कितना सूनापन लगता है।
तोता, तितली, तुतलाहट हो
आँगन तब आँगन लगता है।
उनके लब पै आए तबस्सुम
तब सहरा गुलशन लगता है।
क़िस्मत से वो क्या आए हैं
घर भी वृन्दावन लगता है।
इठलाते झरनों का तरन्नुम
यह मेरा बचपन लगता है।
अश्क जहाँ तारों-सा चमके
'पूनम' का दामन लगता हैं।

—पूर्णिमा पूनम

गीत

आधी सदी काट दी उस ने खा कर चना चबेना जी,
मेहनत उस की मौज तुम्हारी यह सब और चले ना जो।
आज़ादी का मतलब क्या है चूल्हा दोनों जून जले,
सपने में भी किसने चाहा कपड़ा लत्ता गहना जी।
जिसने होरी की मजबूरी बचपन का दर्द सहा,
वह न कहेगा वह न सुनेगा क़िस्सा तोता मैना जी।
धीरे-धीरे मिल कर सबने हिम्मत का पुल जोड़ लिया,
अब लंका तक पहुँच सकेगी भूखी नंगी सेना जी।
सोयी पड़ीं नींव की ईंटें सीलन में अँधियारे में,
जाग उठीं तो फिर न रहेंगे महल अटारी अँगना जी।

—वेदप्रकाश अमिताभ

है यह प्रश्न विकट अनमेल
गीत लिखूँ या बेचूँ तेल ?

तेल बेचने वाले साथी
तेरह सौ हर रोज़ कमाते,
बना एक के तीन मज़े से
मोटर पर चढ़ मौज उड़ाते।

देशी चाय, विदेशी बिस्किट
शाम सवेरे वे हैं खाते,
सन्ध्या को क्लब के केबिन में
पहुंच किसी से हाथ मिलाते।

खेलूँ क्या मैं भी यह खेल ?
गीत लिखूँ या बेचूं तेल ?

—गोपीनाथ उपाध्याय

दोहे

नश्तर से लगने लगे पूछ लिया जब हाल,
झूठ कहूँ तो दिलदुखे सच पर वे बेहाल।
किसे धर्म से प्रेम है किसे जाति से प्यार,
राजनीति का खेल है मन्दिर का व्यापार।
रक्षक ले कर साथ में नेता आया गाँव,
अरे इसी से चाहते हम रक्षा की छाँव।
खून सरीखी चमक से रचना दो चमकाय,
आलोचक के मान पर फिर क्यों जी ललचाय।

—दिविक रमेश

आया है ऐसा समय छूट पा गया पाँव,
फैशन के वाहन चले शहर आ गया गाँव।
मण्डी और बज़ार की अच्छी साँठ व गाँठ
गाँवों में भी बन्द है कब से लगनी हाट।
युग तो अब यह कर रहा ऐसी बन्दर बाँट,
वादे भी बिकने लगे विश्वासों की हाट।
प्यारी से प्यारी करें ऐसी मीठी भूल,
ग़ैरों में भी उड़ चले उसी प्यार की धूल।

—रेखा व्यास

निवेदन

हिन्दी कवियों, कविता के मर्मज्ञ आलोचकों, और कविता के सुधी पाठकों से आग्रह है कि वे अपने विचारों तथा प्रतिक्रियाओं से आज की हिन्दी कविता के मार्ग को प्रशस्त करें। उनके विचारों का प्रकाशन किया जाएगा। युवा कवियों से सहज कविताएँ आमन्त्रित हैं। कविता-संग्रहों की समीक्षा का स्तम्भ यथासमय शुरू किया जाएगा। तब 'सहज कविता' के पृष्ठों की संख्या भी बढ़ेगी।

—सम्पादक

कुछ हाइकु

बन्दर है
अदरक-व्यापारी
नया ज़माना।

कला-पारखी !
भैंस बजाती बीन
शीश धुनो अब।

हर सुविधा
हर सुख से चिपके
हैं ये चमचे।

इन से मिलिये
नहीं अलग हैं उन से
जिन से बचिये।

कैसा युग है
गधे निकल भागे
घोड़ों से आगे।

दल दल में
भटक रहे आशा में
मोती पाएँगे।

हम हैं बाएँ
पर जो वाम, हमारे
पास न आएँ।

—सुधेश

धरती

—ममता लिंगरकर

बादल रोता अपनी पीड़ा
धरती उस के आंसू पी
सुगन्ध बिखराती है।

अँधेरे में प्रजातन्त्र

अँधेरे में
नहीं काला
नहीं गोरा
सब का रंग है, बस एक,
नहीं छोटा
बड़ा कोई
सब बराबर।
तिमिर में ढूँढते हैं मार्ग सब
जितना अँधेरा
उतनी चमकती ज्योति भीतर
मुझे दिखता है
तिमिर में प्रजातन्त्र।

विज्ञापनदाताओं से

साहित्यिक संस्थाएं, प्रकाशक, पुस्तक-विक्रेता, सरकारी, अर्द्धसरकारी, निजी संस्थान, सांस्कृतिक संस्थाएं सुरुचिपूर्ण विज्ञापन भेज सकती हैं। उन्हें रिआयती दर पर प्रकाशित किया जाएगा।

—प्रकाशक

अपना फैसला

—रामचन्द्र माली

फैसले सुनाए जाएँगे
फैसले सुने जाएँगे
इन फ़ैसलों के बीच
ज़िन्दगी तमाम होगी।

इन सिलसिलों से दूर
हिमालयी ऊँचाई पर
सिन्धु के अतल में
नदी के प्रवाह में

सूर्य के प्रकाश में
गुम सा इन्सान
पाषाण बना
सब फैसले सुनता है

एक बार फिर करता है
अपना फैसला।

इलाहाबाद के पुल पर

—सुधेश

भीख माँगना
बेशर्मी है
आत्मा का नंगापन
लेकिन मैंने देखा
इलाहाबाद के पुल पर
बुरके में से बाहर निकला
गोरा नंगा हाथ
भीख माँगता
पूरी लज्जा के साथ ।

बुरके न रख ली
तन की चिथड़ा लाज
छिपा लिया फटे दामन सा दैन्य
पर गोरा नंगा हाथ
कह गया फैल कर
तन मन की करुण कथा
जिसे भीख उन्मूलन का क़ानून
नहीं सुनता
सुनता भी है
तो ऊँचा ।

क्यारी-बीज-संवाद

—रणजीत

बाहर मत झांको मेरे लाल
बाहर का लोभ तुम्हें कहीं का न छोड़ेगा
बाहर की दुनिया में प्रगति है विकास है
धन है, ऐश्वर्य है
पर बाहर की दुनिया भयंकर है दारुण है
चीथ देंगी बाहर तुम्हे फुंकारती हुई लुएं
दल देगा तुन्हें वहाँ गिरता हुआ पाला
बाहर मत झांको बेटे
यहां क्या कमी है तुम्हें
मेरी अपनी कोख की गुनगुनी गर्मी है यहां
मन्द मन्द सुखद अंधेरा है
मैं हूं और मेरे आगोश में घिरे हुए तुम हो
भोजन है, पानी है, सुख है, शान्ति है,
बाहर की दुनिया में सूरज है, चांद है
तुम को झुलसाएंगे तुम को भटकाएंगे,
मेरी कोख में लेकिन तुम स्वयं दीपक हो
तुम्हारी अपनी रोशनी है जो मुझे भी रौशन किये है
बाहर के आंधी-तूफान में
वह रोशनी बुझ जाएगी
बाहर मत ललको मेरे लाड़ले।

तुम्हारी बात मानकर मैं पड़ा तो रहूं
तुम्हारी मोद भरी गोद में
मन तो यही है यहां रहता रहूं सदियों तक

मुझे तो यहां सब सुख है, आराम है
तुम्हारी चारदीवारी में सदा ही सुरक्षित हूं
बाहर सब मुश्किलें हैं खतरे हैं
पर सोचता हूं यहीं पड़ा रहा तो
तुम्हारी मुक्ति कैसे होगी, मां !
तुम कृतकृत्य कैसे हो पाओगी
सार्थकता महसूस करोगी कैसे
मां कैसे कहलाओगी
मुझे जो होगा सो देख लिया जाएगा
पर तुम्हें मैं बांधे नहीं, बांधे नहीं रख सकता हमेशा
जल्दी ही बढ़ जाऊंगा आकाश में
तुम्हारी ही मिट्टी और पानी के सत्व से
खिल उठूंगा एक नयी सृष्टि की सुगन्ध में ।

□□

क्षणिकाएँ

—अपर्णा भट्टाचार्य

चींटी भीड़ को
चीनी भेड़ कहने में
क्या हर्ज है—
उपभोग
आँख जैसी देह के लिए
संयोग
क्या आत्मा का मर्ज़ है ?

□

लड़की बाँसवन में फंसी पतंग
लकी नम्बर ही होता है खुशी का मृदंग,
बताओ तो काठ पर कौन
ठोंक रहा कील ?

□

खान का लोहा
भाग्यवान के सोने में बदल गया,
इस से पारस को
क्या मिला ?

□

यहां कुछ भी खत्म नहीं होता है
क्योंकि शब्द से शब्द यही तो
इशारे में बताते हैं
हँसीं न जाने क्यों हो गई है संक्रामक।

□

SAHAJ KAVITA, A Hindi quarterly,
R. No, 5/AL 11993

साहित्य संगम द्वारा प्रकाशित, प्रसारित साहित्य

1.	फिर सुबह होगी ही (काव्य)	डॉ० सुधेश	मूल्य 30 रुपये
2.	घटना हीनता के विरुद्ध (काव्य	,,	,, 30 रु०
3.	तेज़ धूप (काव्य)	,,	,, 30 रु०
4.	आधुनिक हिन्दी और उर्दू कविता की प्रवृत्तियाँ (आलोचना)	,,	,, 80 रु०
5.	साहित्य के विविध आयाम (आलोचना)	,,	,, 40 रु०
6.	कविता का सृजन और मूल्यांकन (आलोचना)	,,	,, 80 रु०
7.	जीवन-मूल्य और 'स्कन्दगुप्त' नाटक (आलोचना)	श्रीमती कमलेश सिंह	,, 50 रु०

आगामी प्रकाशन

8.	साहित्य-चिन्तन (आलोचना)	डॉ० सुधेश
9.	गीत और ग़ज़लें (काव्य)	,,
10.	मन की उड़ान (यात्रा वृत्तान्त)	,,

प्राप्ति-स्थान

साहित्य-संगम, डी-34 विद्याविहार, प्रीतमपुरा, दिल्ली-110034

सहज कविता-कार्यालय—1335 पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067
तरुण प्रिंटर्स, रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित
आवरण—राजेश शर्मा